ओ३म्

**‘मूर्तिपूजा और जन्मना जाति प्रथा ईश्वरीय ज्ञान वेद के**

**विरुद्ध और हिन्दू समाज के लिए हानिकारक’**

-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

मूर्तिपूजा से तात्पर्य ईश्वर की वैदिक शास्त्रों के अनुसार पूजा, ध्यान व स्तुति-प्रार्थना-उपासना न कर एक कल्पित पाषाण व धातु आदि की मूर्ति बना कर उसमें रूढ़ किये गये वैदिक व कुछ संस्कृत श्लोकों से प्राण-प्रतिष्ठा की कल्पना कर उसके आगे माथा टेकना, शिर झुकाना, भजन-कीर्तन करना, मूर्ति को मिष्ठान्न आदि का भोग लगाना, उससे नाना प्रकार की सुख-सुविधायें, बच्चों की नौकरी, सन्तान आदि की कामना करने से है। मूर्तिपूजा का इतिहास जैन व बौद्ध मत से आरम्भ होता है। इससे पूर्व भारत व संसार के अन्य देशों में मूर्तिपूजा का आरम्भ नहीं हुआ था। अनुमान के आधार पर ऐसा लगता है कि वाममार्गी मत ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते थे जिसका कारण उन्हें ईश्वर का ज्ञान न होना था। उनके आचार्यों ने ईश्वर को जानने का कोई प्रयास, जैसा ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन में किया, नहीं किया था। अतः नास्तिक होने के कारण उन्होंने सामाजिक बुराईयों के विरुद्ध अपना ध्यान केन्द्रित किया और अंहिसा परमो धर्म का विचार, सिद्धान्त व नारा दिया। वस्तुतः किसी निर्दोष प्राणी जिससे हमें किसी प्रकार से हानि नहीं होती, उसकी हिंसा करना अधर्म, अन्याय व पापपूर्ण कृत्य है परन्तु कुछ ऐसे प्राणी भी होते हैं जिनके कार्य व व्यवहार से मनुष्यों को दुःख होता है। ऐसे लोगों व प्राणियों का स्वभाव व व्यवहार बदलने के लिए दण्ड का सहारा लेना होता है जिसमें हिंसा होना स्वाभाविक है। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो निर्दोष लोगों को दुःख पहुंचता रहेगा जैसा कि वर्तमान व्यवस्था में देखा जाता है। वर्तमान में हम देखते हैं कि अपने गुप्त राजनीतिक उद्देश्यों के कारण कुछ देशी-विदेशी ताकतें निर्दोष लोगों की हत्या करवाती हैं और ऐसे दुष्कृत्य को अंजाम देने वाले समाज में ही रहते हैं। जो लोग यह काम करते हैं और जो करवाते हैं उनका ज्ञान भी हमारी व्यवस्था को होता है परन्तु कुछ बने हुए नियमों व दबावों के कारण वह उन्हें समाप्त करने में सफल नहीं हो पाते जिस कारण हमारे निर्दोष सैनिक और आम जनता निरन्तर मृत्यु व मुत्यु के भय से त्रस्त रहती है। इसी प्रकार समाज में होने वाले चोरी, डकैती, बलात्कार आदि अनेकानेक अपराध हंै जहां उनके करने वालों के सुधार के लिए दण्ड दिया जाना युक्ति सिद्ध होता है और बड़े अपराधों के लिए मृत्यु दण्ड देना कोई अनुचित कार्य नहीं है। अतः अहिंसा का अर्थ केवल भोले भाले निर्दोष लोगों व प्राणियों की हिंसा तक ही सीमित माना जाना चाहिये।

मध्यकाल व अतीत में हमारे वाममार्गी मतों के आचार्य जब ईश्वर की जन्म-मरण व्यवस्था के कारण कालकवलित होकर परलोक सिधार गये तो उनके शिष्यों ने उनकी स्मृति में उनकी मूर्तियों का निर्माण किया जिसे बुत कहा जाता था जिसे कुछ लोग बुद्ध का अपभ्रंश भी बताते हैं। तभी से व उसके कुछ समय बाद से इन वाममार्गी आचार्यों की उनके अनुयायियों द्वारा पूजा आरम्भ हो गई थी। वेदप्रचार समाप्त होने व न होने के कारण वाममार्ग का प्रभाव देश व समाज में बढ़ा और हमारे वैदिक धर्म में यज्ञो में हिंसा व जन्मना जातिवाद आदि से त्रस्त लोगों ने जब इसकी शरण छोड़ वाममार्ग को अपनाया तो हमारे धर्माचार्यों ने, देश-काल-परिस्थिति के अनुसार, वाममार्गियों का अनुकरण कर किंचित परिवर्तन के साथ उनकी मूर्तिपूजा को अपना लिया। ऐसा करते हुए उन्होंने वेद और वैदिक शास्त्रों की जिनसे मूर्तिपूजा का निषेध होता है, जाने-अनजाने व स्वार्थवश घोर उपेक्षा की। इस प्रकार से मूर्तिपूजा का अवैदिक कृत्य आरम्भ हुआ था जिसके बाद व साथ-साथ अवतारवाद, फलित ज्योतिष, जन्मना जातिवाद, ऊंच-नीच व छुआछूत, स्त्रियों व शूद्रों को अध्ययन वा वेदों के ज्ञान से वंचित करना आदि अनेक कारणों से समाज विकृत होता चला गया। ईश्वर के अवतार बढ़ते रहे और उन सबकी पूजा होने लगी जिससे मन्दिरों की संख्या में वृद्धि होती रही। हमारा अनुमान है कि मूर्ति पूजा को शास्त्रीय आधार देने के लिए उस समय के कुछ मुख्य संस्कृत-भिज्ञ लोगों ने अपने-अपने अवतारों के चमत्कारों को प्रदर्शित करने के लिए पुराण ग्रन्थों की रचना की।

ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों के द्वारा वेदादि शास्त्र न पढ़ने के कारण देश व समाज घोर अज्ञान वा अविद्यान्धकार में डूब गया जिससे हमारा चारित्रिक पतन हुआ व कुछ काल बाद गुलामी आरम्भ हुई। इस स्थिति में हमारे पूर्वजों, माताओं व बहनों ने विधर्मियों के द्वारा घोर कष्ट सहे जो इतिहास के पन्नों व प्रचलित कथाओं में वर्णित हैं। यह हमारे मध्यकालीन पूर्वजों ने मूर्तिपूजा न कर वेदों का अध्ययन व प्रचार जारी रखा होता तो समाज में जो व्याधियां व विकार आये, वह न आते और गुलामी जैसी दुःखद स्थिति भी न आती। हमारा देश वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर संगठित व बलवान होता। विदेशी आक्रान्ता हमारे देश के महारथियों से पराजित होकर बार-बार आक्रमण करने के प्रयत्न न करते और वैदिक राजनीति व राजधर्म के अनुसार हमारे राजा वैदिक शिक्षाओं का पालन करते हुए इस वैदिक सिद्धान्त के अनुसार सारी धरती को शत्रुविहीन कर देते। ऋषि दयानन्द ने मूर्ति पूजा से होने वाली हानियों की अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में विस्तार से चर्चा कर उसके सभी पहलुओं से देशवासियों को परिचित कराया है। उन्होंने वेद एवं सत्शास्त्रों के आधार पर मूर्तिपूजा को असत्यगामी व हानिकारक सिद्ध किया परन्तु अविद्या से ग्रस्त हमारा समाज उनकी नेक सलाह को न मान सका और उन्हें विष देकर उनका जीवन समाप्त कर दिया गया। मूर्तिपूजा पर बहुत कुछ कहा जा सकता है परन्तु हम पाठकों से अनुरोध करेंगे कि वह पक्षपात छोड़कर यथार्थ रूप में मूर्तिपूजा के सभी पहलुओं पर विचार करने के साथ इसमें सहयोग के लिए सत्यार्थप्रकाश और उसके सातवें समुल्लास से लेकर ग्याहरवें समुल्लास को ध्यान से पढ़े जिससे उन्हें मूर्तिपूजा विषयक विशद् यथार्थ ज्ञान हो जायेगा। आज हम देश में जो उन्नति देखते हैं उसके मूल में हमें उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध व उसके बाद महर्षि दयानन्द व उनके अनुयायियों सहित आर्यसमाज के अनेक देश और समाज सुधार के कार्य दृष्टिगोचर होते हैं। यह भी बता दें कि महर्षि दयानन्द ने पंचमहायज्ञविधि और संस्कारविधि ग्रन्थों को लिखकर ईश्वर के ध्यान, स्तुति, प्रार्थन व उपासना सहित गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि संस्कार पर्यन्त 16 संस्कारों का विधान किया है जिससे देश व समाज मजबूत व अविजेय बनता है।

अब कुछ चर्चा जन्मना जातिवाद की करते हैं। जन्मना जातिवाद है क्या? इसका उत्तर है कि यह वैदिक वर्णव्यवस्था पर आधारित सामाजिक व्यवस्था का विकृत व हानिकारक स्वरूप है। महाभारत काल के बाद वैदिक वर्णव्यवस्था धीरे-धीरे समाप्त हो गई और समय के साथ-साथ इसका स्थान जन्मना जाति व्यवस्था ने ले लिया। ब्राह्मण वेद आदि विद्याओं को पढ़ने-पढ़ाने और यज्ञ करने-कराने, दान देने व लेने वाले लोगों के लिए प्रयुक्त होता था। ब्राह्मण कुल के व्यक्ति में यदि यह योग्यतायें नहीं होती थी तो उनके गुरुकुल के आचार्य उसके माता-पिता का वर्ण उसे न देकर उसके गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार वर्ण प्रदान करते थे। ऐसा ही क्षत्रिय व वैश्यों के पुत्र-पुत्रियों के लिए भी किया जाता था। महाभारतकाल के बाद तथा मध्यकाल में मुख्यतः मनुष्य के गुण-कर्म-स्वभाव पर आधारित वर्णव्यवस्था का स्थान जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था ने ले लिया। अब ब्राह्ामण माता-पिता के पुत्र व पुत्री भी ब्राह्मण कहलाते थे भले ही उनमें ब्राह्मण वर्ण के लिए आवश्यक योग्यतायें हो अथवा न हो। इसी प्रकार अन्य वर्णों में भी ऐसा होने लगा। इसके विपरीत शूद्र वर्ण की सन्तानों को पढ़ने के अधिकार से ही वंचित कर दिया गया। यदि किसी वर्ण का कोई व्यक्ति वेद ज्ञान से युक्त है तो वह तो जन्मना ब्राह्मण होगा ही, इसमें किसी को काई आपत्ति नहीं हो सकती परन्तु जन्मना जाति-व्यवस्था में ब्राह्मण माता-पिता का वेद ज्ञान से शून्य पुत्र व पुत्री भी ब्राह्मण कहलाने व माने जाने लगे। जिस प्रकार डाक्टर का पुत्र व पुत्री डाक्टर, इंजीनियर के बच्चे इंजीनियर और अध्यापक के बच्चे बिना आवश्यक योग्यता के अध्यापक नहीं कहलाते व हो सकते, इसी प्रकार अनपढ़ व अज्ञानी व्यक्ति कभी भी ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य नहीं हो सकते हैं। उनका वर्ण उनकी अज्ञानता व द्विजों की योग्यता न होने के कारण श्रमिक वा शूद्र वर्ण होता था। यह ज्ञातव्य है कि शूद्र भी समझदार होते थे व अन्य तीन वर्णों के कार्यों में यथा सामथ्र्य सहयोग करते थे। वैदिक वर्णव्यवस्था में समाज में छुआछूत व ऊंच-नीच का कहीं कोई स्थान नहीं था। जिस प्रकार आजकल सरकारी कार्यालयों में कोई उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थ तृतीय व चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों से भेदभाव नहीं करते, वैसा ही वैदिक काल में वर्णव्यवस्था में किसी के प्रति कोई भेदभाव नहीं होता था। जन्मना जातिवाद के कारण समाज व देश की अपार क्षति हुई है। इसके अन्तर्गत छुआ-छूत व ऊंच-नीच का व्यवहार अमानवीय प्रथायें हैं। इस व्यवस्था में ब्राह्मणेतर योग्य सन्तानों को उनका उचित स्थान नहीं दिया जाता और अयोग्य सन्तानें अपने माता-पिता व उनकी जाति व बिरादरी के कारण अनुचित सम्मान पाते हैं। सामाजिक अपराधों का यह भी एक मुख्य कारण है। इसका एक अभिशाप यह भी होता है कि हिन्दुओं की हजारों जातियों के कारण कुछ परिवारों में विवाह के अवसर पर माता-पिताओं को गुण-कर्म-स्वभाव पर आधारित योग्य वर नहीं मिल पाते जिस कारण या तो उनकी सन्तानों के विवाह हो नहीं पाते या विवाहित सन्तानों के बेमेल विवाह के कारण उन्हें सारी जिन्दगी इसका दंश झेलना पड़ता है। अधिकांश तलाक व विवाह की असफलता के पीछे यह भी एक कारण होता है। समाज में यह सब चीजें निरन्तर बढ़ रही हैं और आज भी समाज इससे ग्रसित व संतप्त है।

समाज में हम यह भी देख रहे हैं कि जन्मना जाति के आधार पर लोगों ने अपने अपने संगठन बना लिये हैं। यहां तक की देश के कुर्बान हुए महापुरुषों व शहीदों को भी जातिगत दृष्टि से देखा जाने लगा है। हमने पिछले दिनों जातीय आधार पर आरक्षण को लेकर देश हुए अनेक आन्दोलनों को टीवी आदि पर देखा है जिसमें न केवल सरकारी सम्पत्ति को ही हानि पहुंचाई गई है अपितु जातीय आधार पर अपने विरोधियों के व्यवसायिक स्थानों को अग्नि को अर्पित करने के साथ इतर जातियों के प्रति हिंसा व अपमानजनक व्यवहार का भी संगठित प्रयास हुआ है। देश में वोट बैंक की नीति के कारण कोई भी सरकार अन्यायकारियों को दण्ड देने में असमर्थ रहती हैं और इसके साथ सभी दल अपने हिताहित के कारण मौन रखना ही उचित समझते हैं। इन सब कारणों से हिन्दू समाज निश्चित रूप से कमजोर हुआ है। हमें जिन लोगों से हिन्दू जाति की रक्षा की अपेक्षा थी, वही जातिवाद की गहरी भावनाओं के कारण इसकी एकता में बाधक बन रहे हैं। आर्यसमाज के विद्वान व नेता भी ऐसे अवसर पर मौन रहते देखे जाते हैं। कुछ का मौन समर्थन भी देखा जाता है। कुछ सक्रिय रूप से भी भाग लेते हैं। हमारे मौन रहने वाले नेताओं का पता नहीं चलता की वह जातीय आन्दोलन के समर्थन में हैं या विरोध में हैं। इससे भविष्य के प्रति आशंकाओं का होना स्वभाविक है। महर्षि दयानन्द ने विकृत वर्ण व्यवस्था वा जन्मना जातिव्यवस्था को मरण व्यवस्था का नाम दिया है। आज आर्यसमाज भी अधिकांशतः जातिवाद का शिकार है। हमें लगता है कि आर्यसमाजियों के भी 60 से अस्सी प्रतिशत विवाह अपनी जन्मना जाति में ही किये जाते हैं। कुछ नगर में रहने वाले आर्यसमाजी प्रेम विवाह कर लेते हैं जिससे उनके पास कहने को हो जाता है कि उनके बच्चों ने गुण-कर्म के आधार पर विवाह किये हैं। महर्षि दयानन्द का जाति व्यवस्था को मरण व्यवस्था कहना सत्य होता दिखाई देता है। सामाजिक व राजनीतिक दलों के नेताओं को वैदिक सिद्धान्तों को सामने रखकर कुछ गम्भीरता से इन समस्याओं पर विचार करना चाहिये और देश हित में इनका अन्याय व पक्षपातरहित समाधान करना चाहिये। आज देशभर के लोगों के लिए शिक्षा की व्यवस्था का न होना भी लज्जाजनक है। देश में सभी को नैतिक व चरित्र निर्माण से जुड़ी शिक्षा निःशुल्क मिलनी चाहिये, यह आवश्यक है। सरकार को इस चुनौती को स्वीकार करना चाहिये।

हमने अपने कुछ विचार प्रस्तुत किये हैं। इस लेख में आर्य हिन्दू जाति की रक्षा, एकता, उन्नति, सुख व समृद्धि की दृष्टि से कुछ पंक्तियां लिखी हैं। किसी को दुःख पहुंचाना इसका उद्देश्य नहीं है। किसी रोग की उपेक्षा करने से वह असाध्य हो जाता है। अतः यदि हम सही निर्णय करेंगे तो हमें व देश को लाभ होगा, यदि उपेक्षा करेंगे और अपना स्वार्थ सिद्ध करेंगे तो इससे हानि का होना निश्चित है जो अपूरणीय हो सकती है। इति।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**